वर्तमान शिक्षा और आधुनिक शिक्षा में वेद का महत्व

मिहिर कुमार

Email: mihirkumarynu@gmail.com

वेद ही भारतीय संस्कृति का उद्‌गम केन्द्र है, इन्हीं से पुराण-इतिहास, धर्म-दर्शन, ज्ञान-विज्ञान,शास्त्र काव्य आदि की विविध धाराएँ विभिन्न रूपों में प्रसारित हुई है। जब तक वैदिक उपलब्धियों से हमारे सांस्कृतिक विश्वास का कल्पतरु पल्लवित, पुष्पित एवं फलित होता रहा, तब तक हमारे भीतरी और बाहरी जीवन में पूर्णता का समन्वय था, आचरण में उदात्तादर्शों की प्रभविष्णुता थी। ज्यों-ज्यो वेदों के अक्षय एवं अनन्त ज्ञान-विज्ञान वैभव के प्रति हमारे जीवन में उदासीनता बढ़ी त्यों-त्यों हमारे सामाजिक जीवन को विवेक शून्यता का अन्धकार तिरोहित करता गया।

वैदिक ज्ञान-विज्ञान के सद्‌भाव की प्रतीति लौकिक संस्कृत की प्रतिनिधि रचनाओं में मिलती है। इसीलिए वेदोत्तर भारतीय संस्कृति विषयक अध्ययन 'वैदिक संस्कृति' विषयक अध्ययन का पूरक बन गया है। पुराणों, उपनिषदों, वाल्मीकि रामायण, महाभारत आदि के साथ उन संस्कृत महाकवियों का अध्ययन भी नितान्त आवश्यक प्रतीत हुआ, क्योंकि इनके द्वारा राष्ट्र की वैदिक प्रभावापन्न सांस्कृतिक ज्योति को ही प्रेषणीयता मिली है।

वेदों को भारतीय साहित्य का आधार माना जाता है। परवर्ती संस्कृत में विकसित प्राय: समस्त विषयों का स्रोत वेद ही है। काव्य, दर्शन, धर्मशास्त्र, व्याकरण आदि सभी क्षेत्रों पर वेदों की गहरी छाप है। इन सभी विषयों का अनुशीलन ऋग्वेद की ऋचाओं से ही आरम्भ होता है। काव्य के क्षेत्र में उषा देवी की रमणीय शोभा का, देवताओं के स्वरुप के वर्णन में मानवीकरण का, उपभादि अलंकारों के प्रयोग का तथा भाषागत प्रवाह का विन्यास ऋग्वेद के विशिष्टता है।

वेद से वह ज्ञान मिलता है जिसे प्राप्त करने के लिए अन्य कोई साधन इस जगत् में नहीं -

''प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न विद्यते''

एतं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता।।

दर्शन के क्षेत्र में जीवेश्वर - सम्बन्ध, संसार का स्वरूप, सृष्टि, प्रेत्यभाव (पुनर्जन्म), परमेश्वर इत्यादि का निरुपण ऋग्वेद से ही प्राप्त होता है। भाषा-चिन्तन भी ऋग्वेद के मन्त्रों से आरम्भ होकर अन्य संहिताओं तथा ब्राह्मणों तक व्याप्त है। वेद का वेदत्व इस विषय में भी निहित है कि समस्त परवर्ती ज्ञान का बीज यहाँ व्यवस्थित है।

आर्य जाति की प्राचीनतम संस्कृति वेदों में ही मिलती है। यह कहा गया है कि भारत-यूरोपीय भाषा-परिवार का प्राचीनतम अभिलेख वेदों के रुप में ही है। अत: आर्य संस्कृति का प्रथम उन्मेष जानने के लिए हम ऋग्वेद की ऋचाओं का ही अनुशीलन करते है। वेदों का अर्थ जानकर हम भारत की प्राचीनतम संस्कृति और सभ्यता का ज्ञान प्राप्त कर सकते है। यद्यपि उनकी विषय-वस्तु प्रधानतया धर्म से सम्बद्ध है क्योंकि उस युग का लोक-साहित्य सुरक्षित नहीं रह सका, तथापि इस धार्मिक साहित्य में भी लोकजीवन का महत्वपूर्ण रुप झलकता है। इसके आधार पर वैदिक

शोध छात्र,संस्कृत विभाग,पटना विश्वविद्यालय, पटना-800005

युग सभ्यता और संस्कृति का अनुशीलन हो सकता है। भारतीय जीवन-दर्शन की अद्यतन धारा का सम्बन्ध किसी-न- किसी रूप में वैदिक संस्कृति से जुड़ा है। आर्यों के यज्ञों में विश्वास, विविध पदार्थों में देवबुद्धि, भौतिकवाद में अनास्था, पुनर्जन्म में विश्वास, मोक्ष के प्रति लक्ष्यबुद्धि आदि का स्रोत वेदों में ही है।

प्राचीन भारतीय इतिहास तो अपने सभी रुपों में वेदों में मिलता ही है, वह चाहे राजनीति की विचारधारा का हो चाहे, राजनीति संघर्ष का हो। यजुर्वेद और अथर्ववेद में राष्ट्र, राजा-प्रजा के कर्त्तव्य, राजा के चुनाव, मन्त्रि-परिषद्, सभा-समिति की स्थापना,शत्रुनाश, नीति-प्रयोग आदि विषयों पर पर्याप्त सामग्री अवस्थित है। दूसरी ओर ऋग्वेद में विभिन्न जातियों के क्रिया-कलाप, परस्पर युद्ध, प्रयाण आदि का वर्णन है। ऋग्वेद-संहिता अपने युग का एकमात्र प्रतिनिधि ग्रन्थ है जिसमें विपुल रूप में धार्मिक सामग्री निहित है। सामाजिक परिवेश अथवा आर्थिक जीवन की केवल झलक ही इसमें मिल पाती है।

वह युग भी धर्म की प्रधानता का था जिसका प्रमुख साधन यज्ञानुष्ठान था। समाज का प्रबुद्ध व्यक्ति - वह चाहे शासक हो या स्तुतियों का प्रणेता - यज्ञकार्य को प्रमुख माना जाता था। यज्ञ में देवताओं को प्रमुखता प्राप्त है; इसलिए धार्मिक सूक्तों का अर्थ देवताओं का गुण-गान करने वाले सूक्तों के रुप में है। इन सूक्तों में तीन प्रकार की ऋचाएँ मिलती है - परोक्षकृत, प्रत्यक्षकृत् आध्यात्मिक।

''अहं भुवं वसुनः पूर्ण्यस्पतिरहं धनानि सं जयामि शश्वतः''
मं हवन्ते पितरं न जन्तवोडहं दाशुषे वि भजामि भोजनम्।।

संसार के प्रथम ग्रन्थ के रूप में होने पर भी इसका रुप 'विश्वकोश' का है जिसमें ज्ञान और मेधा के सभी पक्षों का चित्रण है।

यह पहले कहा जा चुका है कि मन्त्रों के द्रष्टा ऋषि कहलाते थे तथा ब्राह्मणों के रचयिता आचार्य।

शुक्त यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता के माध्यदिन शाखीय शतपथ ब्राह्मण की रचना का श्रेय आचार्य याज्ञवल्क्य को दिया जाता है। महाभारत में इसका स्पष्ट उल्लेख मिलता है-

प्रतिष्ठास्यति ते वेदः सरिवलः सोत्तरो द्विज ।
तृत्स्नं शतपथं चैव प्रणेष्यसि द्विजर्षम ।।
ततः शतपथं कृत्स्नं सरहस्यं ससंग्रहम् ।
चे सपरिशेषं व हर्षेण परमेण ह ।।
कृत्वा चाध्ययनं तेषां शिष्याणां शतमुत्तमम् ।
सूर्यस्य चानुभावेन प्रवृत्तोऽहं नराधिप ।।
कर्तु शतपथं चेदमपूर्वे च कृतं मया ।
यथाभिलषितं मार्गे तथा तच्चोपपादितम् ।।

शुक्ल यजुर्वेद के साथ याज्ञवल्क्य वाजसनेय का अभिन्न सम्बन्ध है जिसका प्रमाण स्वयं शतपथ ब्राह्मण में मिलता है-

आदित्यनीमानि शुक्लानि बजूषि वाजसनेयेन याज्ञवल्क्येनारण्यायन्ते।

एक सौ अध्यायों में विभक्त होने के कारण इसका यह नाम पड़ा है। शुक्ल यजुर्वेद की माध्यदिन और कण्व दोनों शाखाओं में यही ब्राह्मण है। दोनों शाखाओं के शतपथ ब्राह्मण विभाजन की दृष्टि से भिन्न है क्योंकि माध्यन्दिन शतपथ ब्राह्मण में चौदह काण्ड, 100 अध्याय तथा 7624 कण्डिकाएँ है तो काण्वशाखीय शतपथ ब्राह्मण में 17 काण्ड, 104 अध्याय, 6806 कंडिकाएँ है। दोनों में ब्राह्मणों की संख्या क्रमशः 438 और 435 है। दोनों शाखाओं के ग्रन्थों में प्रथम काण्ड और द्वितीय काण्ड की विषय-वस्तु में परस्पर विनिमय मिलता है। अर्थात् काण्वशतपथ के प्रथम काण्ड का विषय माध्यंदिन शतपथ के द्वितीय काण्ड में है।

शुक्ल यजुर्वेद की संहित का नाम वाजसनेयि-संहिता है जिसकी दो शाखाएँ है- माध्यन्दिन तथा काण्व। वस्तुतः एक ही मूल संहिता दो रूपों सा

संस्करणों में उपलब्ध है। दोनों में अध्यायों की संख्या चालीस ही है किन्तु मन्त्रों की संख्या में भेद है- माध्यन्दिनसंहिता में 1975 मन्त्र हैं जबकि काण्व संहिता में मन्त्रों की संख्या 2086 है। विषयवस्तु दोनों में समान ही है। माध्यन्दिन का प्रचार उत्तर भारत में तथा काण्व का प्रचार महाराष्ट्र में है। इसीलिए उत्तरभारत में 'यजुर्वेद' कहने से उसी प्रकार केवल माध्यन्दिन (वाजसनेयि) संहिता का बोध होता है जिस प्रकार 'वेदान्त' कहने से केवल शांकर-दर्शन समझा जाता है, यद्यपि यह अदूरदृष्टि है। ग्रिफिथ ने भी यजुर्वेद के रूप में इसी संहिता का अंग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत किया है।

प्रतिपाद्यविषय (शुक्लयजुर्वेद)- शुक्लयजुर्वेद की माध्यन्दिन-वाजसनेयि-संहिता का प्रतिपाद्य ही यजुर्वेद की सभी संहिताओं में प्रायः निर्देष्ट है। इसीलिए 'प्रकृति'-रूप में इसी की विषय-वस्तु का निर्देश किया जाता है। अध्वर्यु के लिए संकलित 'प्रकृति'- रूप में इसी की विषय-वस्तु का निर्देश किया जाता है। अध्वर्यु के लिए संकलित होने से यजुर्वेद में मुख्यतः कर्मकाण्ड की निरूपण है। अध्वर्यु यज्ञ के परिमाण का नियामक होता है- यज्ञस्य मात्रा विमिमीत उत्वः (ऋ॰ 10/7/11)। वह अध्वर का संयोजन-सम्पादक (व्तहंदपेमत) होता है (अध्वरं युनक्ति अध्वरस्य नेता)। यज्ञ के मुख्य कार्य-कलाप यजुर्वेद के प्रतिपाद्य हैं।

यजुर्वेद के 40 अध्यायों में प्रथम 25 प्राचीन एवं महत्वपूर्ण हैं जबकि शेष 15 अध्याय खिल (परिशिष्ट) के रूप में माने गये हैं। इस वेद के प्रथम दो अध्यायों में देश और पौर्णमास यज्ञों से सम्बद्ध मन्त्र हैं। दर्श-यज्ञ अमावस्या के दिन और पौर्णमास पूर्णिमा के दिन होता था। तृतीयाध्याय में अग्निहोत्र (दैनिक अग्निपूजा और हवन) एवं चातुर्मास्य (चार महीनों पर होने वाले यज्ञ) का वर्णन है। अध्याय 4 से 8 तक सोमयागों का वर्णन है; इनमें अग्निष्टोम प्रकृतियाग है जिसका विस्तृत विवेचन है। अग्निष्टोम में सोम को पत्थरों से कूटकर उसका रस निकाला जाता था। उसमें दूध मिलाकर दिन में तीन चार बार (प्रातः, मध्याह्न एवं सायंकाल) अग्नि में हवन करते थे। इस क्रिया को 'सवन' कहते थे।

सोमयाग एकाह (एक दिन में पूरा होने वाला) भी होता था, अनेकाह भी। एकाह सोमयोगों में 'वाजपेय' महत्वपूर्ण था। इसके अतिरिक्त राज्यभिषेक के अवसर पर होनेवाला 'राजसूय' यज्ञ भी था। इन दोनों यागों के मन्त्र नवम-दशम अध्यायों में हैं। राजसूय यज्ञ में अस्त्रक्रीड़ा, द्यूत, प्रीतिभोज आदि अङ्ग के रूप में आयोजित होते थे।

अध्याय 11 से 18 तक अग्निचयन का विस्तृत निरूपण है। इसके अन्तर्गत यज्ञागिन की स्थापना के लिए वेदिका का निर्माण होता था। वेदिका 10800 ईंटों से बनती थी जिनके आकारों और प्राप्तिस्थानों के विशेष नियम थे। इसके अन्तर्गत 66 मंत्रों का सोलहवाँ अध्याय है जिसे 'रुद्राध्याय' (नमः शब्द का अधिक प्रयोग) भी कहते हैं। इसमें रुद्र-देवता के विविध रूपों का वर्णन है। अठारहवें अध्याय को 'च में' शब्दों की बहुधा आवृत्ति के कारण 'चमकाध्याय' कहते हैं। इसमें 77 मंत्र हैं, अनेक मन्त्रों के अन्त में 'यज्ञेनकल्पन्ताम्' यह दिया गया है। इसमें जीवन के समस्त आदर्शों तथा सफलता के उपादानों की कामना की गयी है।

अध्याय 11 से 21 तक सौत्रामणी याग का वर्णन है जिसमें अश्विना, सरस्वती, इन्द्र इत्यादि की प्रार्थनाएँ होती थीं। इस याग का अनुष्ठान सोम के प्रति अत्सासक्ति के प्रायश्चित-स्वरूप होता था। इसमें सुरा और सोम दोनों का समर्पण इष्ट देवताओं के किया जाता था- अश्विभ्यां सरस्वत्या इन्द्राय सुत्राम्पो सुरा-सोमान् (यजु॰ 21/59 अन्तिम भाग)। सौत्रामणी-याग में यजमन भी सुरापान करते थे-

सौत्रामण्यां सुरां निबेत् ।

इसके बाद के चार अध्यायों (22-25) में अश्वमेध -यज्ञ की विधियाँ वर्णित हैं। यह यज्ञ सार्वभौम

आधिपत्य के इच्छुक सम्राट के लिए विहित था। राजा को सर्वाधिक महत्व अश्वमेध के अनुष्ठान से मिलता था। वेदों में 'मेध' शब्द का प्रयोग श्रीवृद्धि, समृद्धि, पोषण आदि के अर्थ में होता था। 'अश्व' भी राष्ट्र का बोधक था (राष्ट्रं वा अश्वमेधः)। इसलिए अश्वमेध का अर्थ है- राष्ट्र की श्रीवृद्धि करना, अपना तेज और प्रताप बढ़ाना, राष्ट्र में धन-धान्यादि की समृद्धि करना। इसी प्रकार गोमेध (गोवंश की उन्नति के लिए यज्ञ), सर्वमेध (सामूहिक अभ्युदय का प्रयास), पुरुषमेध (मानवमात्र के कल्याण के लिए यज्ञ), आदि शब्द प्रयुक्त होते थे। अश्वमेध में किस प्रकार राष्ट्र की उन्नति वाञ्छनीय होती थी इसका अनुमान इस प्रसंग के निम्नांकित मन्त्र से हो सकता है-

'आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः यार इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामेनिकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम्।''

अर्थात् हे परमात्मन्, हमारे राष्ट्र में पवित्रज्ञानसम्पन्न तथा तेजस्वी ब्राह्मण उत्पन्न हों; पराक्रमी (शूरः), बाण चलाने में कुशल 'इषव्यः) शत्रु का अत्यन्त भेदन करने वाला (अतिव्याधी), महान् योद्धा क्षत्रिय (राजन्यः) उत्पन्न हो; अधिक दूध देनवाली गाय, भार ढोने में समथ शक्तिशाली बैल, शीघ्रगामी अश्व (आयुःसप्ति), सर्वगुणसम्पन्न स्त्री (पुरन्धिः येषा), रथ में बैठने वाले (रथेष्ठः) तथा यात्रुविजेता (विष्णु) वीर (उत्पन्न हों); इस यजमान को सभा में जाने योग्य (सभेयः) युवक वीरपुत्र उत्पन्न हों, पर्जन्य हमारी इच्छा के अनुसार (निकामे-निकामे) वर्षा करता रहे; हमारे पौधे फल से युक्त होकर स्वयं पकते रहें; हमें अप्राप्त की प्राप्ति और प्राप्त की रक्षा (=जीविका के साधन, योगक्षेमः) मिलती रहे। स्पष्टतः राष्ट्र की अभ्युन्नति की कामना व्यापक परिवेश में अध्वर्सु ने की है।

यजुर्वेद के अन्तिम पन्द्रह अध्याय खिल होने के कारण नये विषयों से सम्बद्ध हैं। अध्याय 26 से 29 तक पूर्व अध्यायों में निरूपित यागों से सम्बद्ध नये मन्त्र दिये गये हैं। अतः ये अध्याय किसी ग्रन्थ के परिशिष्ट जैसे लगते हैं। तीसवें अध्याय में पुरुषमेध का वर्णन है जिसमें 184 पुरुषों के मेध (उन्नति) के निर्देश हैं। भौतिक दृष्टि यजुर्वेद का 40 वाँ अध्याय विशुद्ध ज्ञानकाण्डात्मक है जो ईशावास्योपरिपद् के रूप में आगे चलकर प्रसिद्ध हुआ। इसमें 17 मन्त्र हैं। इसका अन्तिम मन्त्र इस वेद को आदित्य सम्प्रदाय के अन्तर्गत निर्दिष्ट करता है-

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुख्म् ।
योऽसावादित्ये, पुरुषः सोऽसावहम् ।।

इस प्रकार यजुर्वेद में कर्मकाण्ड की परिणति ज्ञानकाण्ड के रूप में दिखायी गयी है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

1. ऋक्सूक्तनिकरः भूमिका, पृष्ठ सं॰ 54-77
2. निरुक्तम् हिन्दी टीका - डॉ॰ उमाशंकर शर्मा 'ऋषि'
3. वैदिक एवं वेदोत्तर भारतीय संस्कृति- श्री गंगाधर मिश्र
4. संस्कृत साहित्य का इतिहास - डॉ॰ उमाशंकर शर्मा 'ऋषि'
5. प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका - डॉ॰ रामजी उपाध्याय